जीवन्मृतः कोऽस्तिनिरुद्यमो यः ॥

भावार्थः—वे पापात्मा जीते जी मरेहुवे मुरदे के समान हैं जो उद्योगरूपी पुरुषार्थ से रहित हैं ॥ पृश्नोत्तरी में स्वामी शंकराचार्यजी आज्ञा देते हैं:—

ॐ

॥ श्री पशुपतये नमः ॥

सत्यसनातन दानदर्पण

अर्थात्—

बलिदानपत्र नं० ३

जिसको

श्रीमत् स्वामी परमानन्द भारतभिक्षु

ने

विचाररूपी तराजू पर तौल कर

देखने के लिये

देवता, असुर और मनुष्य का कर्त्तव्य दिखाया है ॥

डॉ० धारशी गुलाबचंद संघाणी H.L.M.S. के प्रबन्ध से

सुखदेवसहाय जैन प्रिंटिंगप्रेस, अजमेर में मुद्रित

माघ शुक्ला बसंतपंचमी सं० १९७१

धर्म्म के नाम से होने वाले अत्याचारों का रोकना ही इसका मूल्य है.

तुलसी हाय गरीबकी कभी न निष्फल जाय।
मरी खालके स्वास से सार भस्म हो जाय ॥

यञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ (मेघदूत)

भावार्थः- शुभगुण संपन्न महांवंशमें उत्पन्न भये महापुरुषके समीप याचना करते पर भी निष्फल होजाय तो भी श्रेष्ठ है, परंतु नीचके समीप याचना करके पूर्ण मनोरथ होना भी न होने के समान है ॥

जे नृप है अधिकार लें, करें न पर-उपकार। पुनि ताके अधिकारको, पुनः पुनः धिक्कार ॥

ऐसे श्रीमानों को कोटानुकोट वार धन्यवाद है.

जिस प्रकार श्रीमान् नैपाल नरेश ने इनकी पुकार सुनी है उसी प्रकार महाराजा इन्दोर ने भी दशहरा के दिन राज और जमींदार के दोनों भैंसों को, जो कई वर्षों से बर्छीसे घायल कर सवारों द्वारा कष्ट देकर मारे जाते थे, इस वर्ष दोनों प्राणियों को अभयदान देकर अक्षय पुण्य को प्राप्त किया है.

विलायतयात्रा से पधारने पर श्रीमान् महाराजा साहब जोधपुर ने भी भैंसों और कई बकरों को अभय दान देकर उन्हीं बकरों और भैंसों के मूल्य की मिठाई मंगाकर पुजारी और माताजी के मांसलोलुप भक्तों को खिला कर उनके हृदय में जीवदया का अंकुर उत्पन्न कर इस अक्षयपुण्य रूपी वृक्षकी सुयश रूपी शाखा को समस्त भूमण्डल में इसी अल्पायु में फैलादी, निस्सन्देह हमें ऐसे ही श्रीमानों से देश के कल्याण की आशा है, हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मनुष्यमात्र को ऐसी सुमति दे और जहां २ से ऐसे कुकर्म की निवृत्ति हो सज्जनवृंद वहां २ से सूचना भेजते रहें ।

विज्ञापन ॥

जो सद्गृहस्थ इस पुस्तक को विना मूल्य नहीं लेना चाहें वे नीचे लिखे पते पर छपाई का मूल्य -) और डाकमहसूल)॥ भेजकर भी मंगा सक्ते हैं और जो सज्जन इस परोपकारी कार्य्य में सहायता देना चाहें वे भी नीचे के पते पर यथाशक्ति द्रव्य भेज सकते हैं. इसके अतिरिक्त जो सज्जन लेखक का कार्य तथा तस्वीर, ब्लाक वा लेख देसकें वे भी दे सकते हैं।

१-सेठ नागरदास मणीभाई खज़ांची.
आबू पहाड़ (राजपूताना)

३ हरिद्वार कुंभ

२-राजवैद्य पं० रामदयालजी, अध्यक्ष-
आयुर्वेदोक्त औषधालय तथा चिकित्सालय,
अजमेर.

भूल सुधार ॥

१-पृष्ठ १५ पंक्ती १० में ग्वाल अष्टमी के स्थान में गो-क्रीड़ा, जो दीपमाला के दूसरे दिन होती है ।

२-पृष्ठ १६ पंक्ती २८ में सरयूपार के स्थान में पटना पार होना चाहिये, सो इस प्रकार स्वयं सज्जन सुधारलें ॥

ॐ

॥ श्री पशुपतये नमः ॥

बलिदान पत्र नं० ३. द्वितीया वृत्ति देवता असुर और मनुष्य का कर्त्तव्य विचाररूपी तराजू पर तोलकर देखना चाहिये ।

श्री श्री १०८ श्री नैपालमुकुटमणि श्री महाराजाधिराज श्री चन्द्र शमशेर बहादुर आज्ञा देते हैं कि डाक्टर रत्नदासजी, स्वामीजी से प्रमाण ले आओ, हम अति निषिद्ध बलिदान को बंद करेंगे. डाक्टर साहब ! लीजिये श्रीमान् की भेट कीजिये, वाममार्गी हत्याचारियों के मंदिरों पर कृपया इसे लगवा दीजिये ।

दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥ वज्रसूची उपनिषद् ॥

भावार्थः—जो ज्ञानरूपी नेत्रसे रहित हैं उनको यह दूषण है और जो ज्ञानरूपी नेत्र से संयुक्त हैं उनको यह भूषण है ।

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥ २ ॥ चाणक्य ।

भावार्थः—दयाहीन धर्म को और विद्याहीन गुरुको त्याग देना चाहिये ॥

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो हि निर्णयः ॥ युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिर्विजायते ॥ ३ ॥ बृहस्पति ॥ युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ॥ अन्यतृणमिव त्याज्यमप्युक्तं परमेष्ठिना ॥४॥ वशिष्ठ ॥

भावार्थः—केवल शास्त्र के आधार परही निर्णय नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वार्थी पुरुषों ने दूधमें पानी मिला दिया है । जो विचार युक्ति से रहित होता है उससे धर्म्म की हानि होती है ।

हे रामचन्द्र ! जो वचनयुक्ति करके युक्त हो वह बालक तथा मूर्ख से भी ग्रहण करना और जो वचन युक्ति से रहित हो, साक्षात् ब्रह्माजी का भी हो तो सूखे तृण के समान त्याग करना चाहिये । परमेश्वर ने इसीलिये मनुष्य को बुद्धि दी है ॥

प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुराः । उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुः ब्रवीतु नो भवानिति । तेभ्यो हैतमक्षरमुवाच द इति ।

अथ हैनं मनुष्या ऊचुः ब्रवीतु नो भवानिति । तेभ्यो हैतमक्षरमुवाच द इति । अथ हैनं असुरा ऊचुः ब्रवीतु नो भवानिति, तेभ्यो हैतमक्षरमुवाच द इति । तदेतदेषा दैवी वागनुवदति स्त-

नयित्नुर्द द द इति । दाम्यत दत्त दयध्वम् इति। तदेतत्त्रयं–शिक्षेतदमं दानं दयामिति। यजुर्वेद "शतपथ ब्राह्मण" काण्ड १४। अध्याय ८। ब्राह्मण २॥

भावार्थः–जगत्पिता ब्रह्माजी ने सब जीवों को अपने २ कर्मों के अनुसार तीन प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि उत्पन्न की थी, सात्विकी, राजसी और तामसी. इन तीनों ही प्रजाओं ने ब्रह्मचर्य को धारण कर अपने उत्पन्न करनेवाले पितामह के पास जा निवेदन किया कि हमारे कल्याण का उपदेश कीजिये। पितामह ब्रह्माजी ने उनको ३ दकारों का उपदेश दिया. यथाः–देवताओं को दमन, मनुष्यों को दान और दैत्यों को दया करना।

वर्त्तमान काल के देवताओं का कर्त्तव्य।

वर्त्तमान काल के देवताओं का कान में फूंकना वा कंठी बांधना, माथे पर तिलक देना वा छल कपट की कथा तथा दो चार पंक्ति वेदान्त की सुनाना वा हाथ में सूत्र बांधना वा चरण धोकर पिलाना, एवं बिना अपराध कांन फाड़कर चेले बनाना, शंख चक्र गदादिकों की छाप को अग्नि में लालकर भुजाओं को बिना अपराध दागना, जूंठा खिलाना, स्टेशनों के पार्सलों के मार्के के समान चिन्ह देकर छोटे २ बच्चों के ब्रह्मचर्य व्रत को गिराना, कन्याव्रत को नष्ट करना, पातिव्रत धर्म को रसातल पहुंचाना, विधवाओं को कलंकित कर धर्मबल से दूषित कर उनके गर्भ को गिराना, बाल्यावस्था में विवाह कराना, साठ वर्ष के वृद्ध पुरुष के साथ बाल कन्या का विवाह कराना, जूंठी पत्तलों के चाटने वाले हे विषयलोलुप देवताओ! इन्द्रियों का निरोध करके कन्या–पाठशाला तथा पतिव्रता स्त्रियों के नित्य नियम के वास्ते स्त्री समाजरूपी मंदिर को स्थापित करो, तबही तुम्हारा कल्याण होगा॥

जीवघातक (राक्षस) पुरुषों का कर्त्तव्य।

पितामह ब्रह्माजी ने जीवहिंसकों को असुरों की पदवी दी है। कृष्ण भगवान् ने ऐसे कुकर्मियों को मूढ़ों की पदवी देकर आसुरी योनि की प्राप्ति कही है "आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि" वेदव्यासजी ने मच्छी मांस तथा शराब के सेवन करने वालों को धूर्त्तों की पदवी दी है। सो यह है सुरां मत्स्यान्मधुमांसमासवं कृसरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥ महाभारत। शांतिपर्व। अध्याय २६५॥ गुरु गोविन्दसिंहजी

ने भी शराबी, कबाबी, व्यभिचारियों को असुरों की पदवी दी है जैसे—"कुकृत्त कर्म जगत में करहीं तिनको नाम असुर जग धरहीं" गुरु नानकजी ने जीवहिंसकों को हत्यारे, म्लेच्छ और पापियों की पदवी दी है जैसे "असंख गलबड हत्या कमाये। असंख म्लेच्छ मल भक्ष खाये। असंख पापी पाप कर जाने जोये" हरिभक्त पीपाजी ने ऐसे पापियों के पेट को श्मशानभूमि कहा है "जीव जीव को खाय कर जीव करे व्याख्यान। पीपा प्रगट देखिये थाली माँयँ मसाण" हरिभक्त कबीरजी ऐसे विचारशून्यों को दयाहीनों की पदवी देते हैं—

"उस हलाल उस झटका कीन्हों, दया दुवांते भागी। कहत कबीर सुनोरे सन्तों, आग दुवां घर लागी"।

दयावान पुरुष इनको दैत्यों की पदवी देते हैं, सज्जनवृन्द इनको धिक्कार की पदवी देते हैं, भारतभिक्षु ऐसे मांसभक्षक पुरुषों के पेट को क़बरस्थान कहते हैं जिसमें कि असंख्य मुर्दे दफन किये जाते हैं, रामलीला वाले ऐसे पापात्माओं को राक्षसों की पदवी देते हैं, रावण जैसे वेदों के वक्ता ब्राह्मणकुलशिरोमणि पुलस्त के पौत्र और महाप्रतापी इन्द्रादि देवताओं को भी जिसने दमन किया था परंतु दुष्टाचारी होने से उसी रावण को दशहरे के दिन काला मुखकर गधे का सिर लगा राम लक्ष्मण द्वारा उसको मरवा कर, जला कर इतने पर भी सन्तोष न कर धूली उड़ाना और सनातनधर्म की जय मनाकर रावण जैसे अत्याचारी को राक्षसों की पदवी जब सनातन धर्म देता है तो वर्त्तमान काल के ऐसे दुराचारियों को जो ऐसी राक्षसों की पदवी दे, तो सनातनधर्म की इसमें क्या कृपणता है ? सनातन धर्मावलम्बियों को विचाररूपी नेत्रों से देखना चाहिये, कि मलमूत्र से उत्पन्न भया जो ऐसा अपवित्र और अतिनिषिद्ध मांस उसको वेदमन्त्र रूपी सोने के चमचे से वा वाममार्ग रूपी लोहे के चमचे से वा कसाई की छुरी से देवस्थान रूपी मंदिर में मार कर वा चौके रूपी श्मशान में दाह कर मुखरूपी कुंड में हवन कर रसना रूपी माता को भोग लगा कर वा पेट रूपी पिता को प्रसन्न कर, ईश्वर के नियम को उल्लङ्घन कर तज्जनित कोप से देश का सत्यानाश कर विपरीत धर्मियों द्वारा अपना उपहास करा कर फिर भारतवंशी कहाना इससे परे और क्या

लज्जा वा शोक का स्थान है! आपके पूर्वजों ने किस प्रकार से जीवरक्षा का परिचय दिया है सो नेत्र खोलकर देखिये:—

कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः । ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—कर्णने अपनी त्वचा उतारकर इन्द्र को समर्पण की, शिबिराजा ने एक कबूतर की रक्षा के वास्ते अपना शरीर काट २ कर सारा शरीर बाज को भेट करादिया. जीमूतवाहन राजा ने एक नाग (सर्प) की रक्षार्थ अपना शरीर गरुड़ को अर्पण कर दिया था, दधीचि ऋषि ने अपना शरीर देवताओं को अर्पण किया, जिस शरीर की हड्डी आदिकों का अस्त्र बनाकर दुष्ट दैत्य को मारकर जीवमात्र का कल्याण किया, ऐसा कोई पदार्थ भारतवर्ष में नहीं था, जो परोपकार के वास्ते नहीं दिया जासके अर्थात् दशरथ राजा ने अपने प्राणों से प्यारे राम लक्ष्मण को ऋषि विश्वामित्र जैसे भारत भिक्षुक के याचना करने पर यज्ञ रक्षार्थ समर्पण किये। इसी प्रकार एक भारतभिक्षुक की प्रार्थना है कि परस्पर (आपस) में किसी जीव को विना अपराध क्लेश (दुःख) मत पहुंचाओ, नहीं तो याद रखना चाहिये कि जो जिस का मांस खाता है वह उसका मांस अवश्य खायगा, यह ईश्वर का न्याय है यथाः—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत । तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः ॥ महाभारत ॥

भावार्थः—हे भारत ! जितने रोम पशु के शरीर में हैं उतने वर्षों पर्य्यन्त पशुघात करने वाले वा खाने वाले वा उसके उपदेश देने वाले आदि आठों पुरुष नरकरूपी अग्नि में पड़े हुए पकाये जाते हैं। यदि तुम अपना कल्याण चाहो तो, पितामहजी ने आप लोगों को दकार से जीवों पर दया करने का उपदेश दिया है अर्थात् लूले, लंगड़े, दुःखी, दीन, न बोलने वाले तथा सूखे तृण, पत्तों को खाकर अमृततुल्य पदार्थों को देनेवाले जो हैं, उनकी भली प्रकार से रक्षा करो, तभी तुम्हारा कल्याण होवेगा।

मनुष्यों का कर्त्तव्य।

इसी प्रकार पितामहने मनुष्यों को दकार से दान करने का उपदेश दिया है। बलवान् पुरुषों का दान यह है कि अपने से निर्बल, हीन, दुखी, असहाय जीवों की रक्षा करना सो सत्युग में राजा बलिने एक दीन तथा

अवस्थाहीन (असमर्थ) वामनजी को दान दिया था, जिसका कि चित्र आप लोगों के दृष्टिगोचर है, इसी को बलिदान कहते हैं। यही चार अक्षर बली पुरुषों का दान सर्वमान्य प्रामाणिक मानना चाहिये। और ऐसे उत्तम अर्थ को त्यागकर स्वार्थान्ध पुरुषों ने सर्वोपयोगी मूक, असहाय जीवों को अनेक प्रकार के जीतेजी कष्ट पहुंचाकर अर्थात् जीते जीवों का हाथों से चमड़ा चीरना वा गले की त्वचा उतारना तथा गले की दोनों बाजू खून की नसों को खींच २ कर और नसों को काटकर खून को ईंट पत्थरों के देवता पर चढ़ाना, पश्चात् उसका गला काटना, उसके द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना, यह अर्थ बलिदान शब्द का करलिया है इस अर्थ को त्याग कर हे स्वार्थान्ध! प्रमादके वशीभूत, हे वाममार्गियो! अत्याचारियो! जो तुम ईश्वर की प्रसन्नता वा महान् सुख की इच्छा चाहते हो तो पत्र पुष्पादि से पूजा करो, सो पत्रपुष्प ये हैं:—

अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। दयाक्षमाज्ञानपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम्॥ महानिर्वाण तन्त्र॥

भावार्थः—कल्याण की इच्छा वाले वा संपूर्ण सिद्धिरूपी सुखों को चाहने वाले, राजरूपी सर्वसिद्धियों के सुखों के चाहने वाले पुरुषों को उचित है कि ईंट पत्थर के देवता को त्याग कर सर्वव्यापी ईश्वर की प्रसन्नता के निमित्त अहिंसारूपी परमपुष्प, ब्रह्मचर्य धारण कर, इन्द्रियों का निरोध, दया, क्षमा और ज्ञान ये पांच पुष्प भगवान् को समर्पण कर पश्चात् यह बलिदान करना चाहिये सो बलिदान यह है:—

कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्वा जपं चरेत्। मालावर्णमयी प्रोक्ता कुण्डलीसूत्रयंत्रिता॥ महानिर्वाण तन्त्र॥

भावार्थः—फिर काम क्रोधादि जो दुष्ट संपूर्ण सिद्धियों के नष्ट करने वाले हैं इनको बलिदान देकर भगवान् का जप, कीर्त्तन, गुणानुवाद गायन करो। इस प्रकार कुण्डलीसूत्र में गुंथी हुई माला ही श्रेष्ठ है।

दान देना ही मनुष्यजन्म की सफलता है सो जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है सो यह है:—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥

भावार्थः—दान देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है, ऐसा विचार कर जो बिना उपकार किसी (अनाश्रित

दीन दुःखी जीवों) को दिया जाय, देश (जिस स्थान में आप खड़े वा बैठे हैं वा चलते हैं अथवा असमर्थ होकर लम्बे पड़े हैं) काल (जिस काल में आप के हृदय में दान देने का संकल्प स्फुरण हुआ) पात्र (अपने समीप हो वा ग्राम में वा बहुत दूर हो परन्तु सुपात्र हो) उसको वहां श्रद्धापूर्वक पहुंचा देना सात्विकी दान है। अर्थात् ईश्वर की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

दान देने की श्रुति में भी आज्ञा है, यथा-श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया देयम्, श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्, संविदा देयम् ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥

भावार्थः-(१) दान श्रद्धापूर्वक देना चाहिये।

(२) दान अश्रद्धा से भी देना चाहिये।

(३) दान शोभा के लिये भी देना चाहिये।

(४) दान लज्जापूर्वक भी देना चाहिये।

(५) दान रोगभय, राजभय, जातिभय, मृत्युभय आदि से भी देना चाहिये।

(६) सज्जन और विद्वानों तथा हरिभक्तों की सभा में प्रतिज्ञापूर्वक भी देना चाहिये।

एवं छः प्रकार के दान की भगवती श्रुति ने आज्ञा दी है, सो दान के पात्र ये हैं:-

दान के पात्र।

(१) सबसे प्रथम दान संसारमात्र की रक्षा करनेवाला, आठों वसुओं के तेज करके संयुक्त ईश्वर का विशेष अंशरूप राजा है उसकी आज्ञा पालन करना, तथा आपत्काल में उसको सर्वस्व दान देना चाहिये, क्योंकि संसार की मर्यादा को स्थापित करने वाला अर्थात् मनुष्य से लेकर पशु पक्षी वा वनस्पति पर्यन्त सब की पुकार को श्रवण करने वाला राजा ही है, यदि आपत्काल में उस राजा को दान, मान आदि से सहायता नहीं दी जावे तो सत्पुरुषों की मर्यादा को नष्ट भ्रष्ट करने वाले दुष्ट जनों से कौन बचा सक्ता है? दुष्टों को दमन करने में राजा ही समर्थ है, जिस राजा को जीवमात्र पर समदृष्टि से उचित शासन करने के लिये ईश्वर ने ही स्थापित किया है, छोटे से छोटे राजा को लेकर चक्रवर्ती पर्यन्त जो राजा पक्षपात रहित होकर अपने शरीर व अपने पुत्र के समान प्राणीमात्र की पुकार को श्रवण करता है उस राजा

की जड़ पाताल में और शाखा दशों दिशाओं में विस्तार को प्राप्त होती हैं और जो राजा स्वार्थ के वशीभूत होकर पत्तपात से दीन दुःखियों की पुकार को नहीं सुनता है वह कुपथ्य-सेवी रोगी के समान दीर्घ काल पर्यन्त दुःखका अनुभव करता है।

(२) दूसरा दान—जो मातृभूमि की सेवा करने वाले हैं उनको देना चाहिये क्योंकि ऐसा दुःसाध्य कार्य करने में मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है इसवास्ते ये भी विशेष रूप करके ईश्वर के ही अवतार हैं। मन कर के उनके शुभचिन्तक होना, वाणी से उनके गुणानुवाद गाना, तन और धन तो सज्जनों की चरणों की धूली के समान है इसका तो समर्पण ही क्या है अर्थात् तन, धन तो इनके ऊपर से वारकर के फेंक ही देना चाहिये।

(३) तीसरा दान—नानाविधानि कर्म्माणि कर्त्ता कारयिता च यः। सर्व-धर्म विधिज्ञश्च स वै आचार्य उच्यते ॥

भावार्थः—अष्टादशवेद विद्याके प्रस्थानों को जाननेवाला, नाना प्रकार के कर्मोपासना और ज्ञान अर्थात् सम्पूर्ण संसारमात्र का व्यवहार तथा परमार्थ को करने कराने वाला आचार्य कहलाता है उसे देना।

(४) चौथा दान—जो संपूर्ण संसार के सुख की उत्पत्ति तथा संपूर्ण दुष्ट व्यसनों की निवृत्ति का परमपूज्य स्थान जो ब्रह्मचर्याश्रम है उस में देना।

(५) पांचवां दान—वेदादि सत्य-शास्त्रों का जो देवनागरी भाषा में प्रचार करके मुफ्त में बांटते हैं वा कम क़ीमत में देते हैं उन्हें देना।

(६) छठा दान—अनाथाश्रम वालों को जोकि दुष्ट व्यसनादि कर्मों से बचाकर धर्म वा अर्थ की शिक्षा देते हैं उन्हें देना।

(७) सातवां दान—पातिव्रता धर्म की रक्षा करने के लिये स्त्रियों के नित्य नियम पूजापाठ के निमित्त स्त्रीसमाज रूपी मंदिर स्थापित करने को देना, क्योंकि इन्हीं के पेट से अवतार ऋषि मुनि, हरिभक्त, धर्मवीर, दानवीर तथा महावीर उत्पन्न होते हैं। यदि इनके नित्यनियम के स्थान (मंदिर) वा भंडारी, कोठारी रसोइया आदि अलग न हों तो दुष्टों के संसर्ग (संगत) के दोष से डरपोक, नपुंसक, कृपण, मूर्खादि दुष्ट सन्तान उत्पन्न होकर देश का नाश करती है।

(८) आठवां दान—विधवाश्रमों को देना, इसके न होने से वेश्याओं की वृद्धि, यवनों की वृद्धि, व्यभिचार की

वृद्धि, हत्या द्वारा पाप की वृद्धि, रोग शोक की वृद्धि और कुश्चियनों की वृद्धि, भारत सन्तान की हानि, भारतधर्म की हानि, भारतधन की हानि यदि व्यभिचार से पकड़े जायं तो अपने मान धन की हानि, दुष्टजनों द्वारा दोनों को मरवाने से हानि, गर्भ के प्रकाश होने से कुल मर्यादा की हानि, भारत संतान उच्च कुल वालों के वीर्य की नीच कुल में जाने से हानि, दुष्टों द्वारा गर्भपात होने से हानि।

(९) नववां दान–कन्या पाठशाला को देना, जिसके न होने से विपरीत धर्मियों के निकट कन्याओं को भेजने से भारतधर्म का जो आचरण है वह नष्ट होता है।

(१०) दशवां दान–संपूर्ण विद्याओं की वृद्धि के निमित्त पुस्तकालय, उपदेश भवनों के निमित्त देना तथा जिन मंदिरों में दुष्ट कर्म नहीं होते सदैव कथा, कीर्त्तन, संध्या, अग्निहोत्रादि नित्यकर्म होते हैं उनका जीर्णोद्धार करना।

(११) ग्यारहवां दान–भारतवर्ष के हुनर और कारीगरी कला कौशलादि की वृद्धि करना चाहते हैं उन भारतीय विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय आदि को देना क्योंकि विश्वकर्मा भगवान की यादगार रखने वाले हैं।

(१२) बारहवां दान–महामंडल आदि जो पक्षपात रहित उपदेश की वृद्धि करने वाले हैं उनको देना।

(१३) तेरहवां दान–कुष्ठि रोगग्रसिताश्रम को देना।

(१४) चवदहवां दान–पागल आश्रम को देना।

(१५) पन्द्रहवां दान–अंधों के आश्रम को देना।

(१६) सोलहवां दान–धर्म्मार्थ औषधालय तथा अस्पताल आदि को देना।

(१७) आयुर्वेद के जीर्णोद्धारक अर्थात् वनस्पतियों के प्रादुर्भाव करने वालों को देना।

(१८) जिस देश में भारतभिक्षु विद्या, तप, सत्य उपदेश के निमित्त निवास करते हैं उनको अन्न वस्त्र और निवासस्थान की सहायता देने वाले जो हरिभक्त हैं उनको देना।

(१९) जिस स्थान में यात्रि आदिकों को निवासस्थान का कष्ट हो वहां उनके लिये धर्मशाला, बगीचा वा तालाव, बावड़ी, कूप, प्याऊ वा मार्ग सुधार कराना वा वृक्ष लगवाना, पुल बंधवाना, अन्नक्षेत्र में अर्थात् जहां सुपात्र वा दीन दुःखियों को अन्न

मिलता है, अन्धेरे में दीपकादि रोशनी इत्यादि में धन को लगाना।

(२०) जहां दुर्भिक्षरूपी आपत्ति-काल है, अर्थात् महामारी, भूकम्प, अग्नि, जलका अति वर्षना वा न वर्षना और डाकू, चोर आदिकों से होने वाले दुःखों के शान्ति के लिये अन्न वस्त्र ओषधि निवासस्थान आदि देने चाहिये।

(२१) जहां जीवदया का प्रचार करने वाले हैं उनको देना, क्योंकि मूक और असहाय जीवों की पुकार को ईश्वररूपी राजा तक पहुंचाना उन्हीं से होता है।

(२२) जहां गऊ आदि मूक असहाय रोगग्रसित पशुओं की रक्षा की जाती है वहां देना।

(२३) न केवलं ब्राह्मणानां दानं सर्वत्र शस्यते। भगिनी भागिनेयानां मातुलानां पितृस्वसुः॥ दरिद्राणां च बन्धूनां दानं कोटिगुणं भवेत्। मातृगोत्रे शतगुणं स्वगोत्रे दत्तमक्षयम्॥

भावार्थः—केवल ब्राह्मणों को ही दान देना श्रेष्ठ है ऐसा नियम नहीं है, किंतु बहिन, भानजा, मामा, भूवा, अपने सपिंड वा श्वसुर वा इष्ट मित्रादि भी यदि दरिद्री हों तो अवश्यमेव धन, अन्न, वस्त्र वा स्थान आदि से उनकी सहायता करनी चाहिये, उनको दान देने से कोटिगुणा पुण्य होता है, माता के गोत्रवालों को दान देने से सौगुणा पुण्य होता है और निज गोत्र वालों को देने से अक्षय पुण्य होता है।

(२४) दरिद्रान्भर कौन्तेय माप्रयच्छेश्वरे धनम्।

भवार्थः—हे अर्जुन! दीन और दुःखियों का भरण पोषण करो और धनवानों को दान मत दो अर्थात् इस का भाव यह है:-महाराज श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! जो तप से हीन हो उनको तपस्वी बनाओ, जो विद्याहीन हो उनको विद्या देओ और जो अन्न वस्त्र हीन हो उनको अन्न वस्त्र देओ, जो रोगग्रस्त हों उनको औषधि प्रदान करो, जो कारीगरी आदि हुनर से रहित हैं उनको कला कौशल में निपुण करो, जो अनाथ हों उनको सनाथ करो, जो हृष्टपुष्ट होकर जप तप विद्या से रहित हैं उनको काम में लगाओ, जो बालक बालिकायें ब्रह्मचर्य धर्म से रहित हैं उनको ब्रह्मचर्याश्रम में भरती करो। जो व्यभिचारादि व्यसनों से ग्रसित हैं उनको सदाचारी बनाओ, परन्तु धनवानों को दान मत दो अर्थात् ठाकुरजी को छप्पन भोग लगाकर बाजार में ख

जाकर अछूत जातियों से छुआकर अपवित्रस्थान में रखकर उस अन्न को जो बेचने वाले हैं उनको धन मत दो, क्योंकि सब से अति अपवित्र जो मांस मदिरा है सो भी ऊंचे स्थान पर रखकर बेचते हैं तब अन्न जैसे पदार्थ और ठाकुरजी के भोग का निरादर करने वालों को जो दान देते हैं मानो नरक का मार्ग अपने वास्ते स्थापित करते हैं, उक्त भोग के अन्न को खाना भी महा पाप है क्योंकि कैसे २ कुकर्मी वहां जाकर ठाकुरजी को चढ़ाते होंगे—मच्छियों के पकड़ने वाले वा पक्षियों को पकड़नेवाले वा पशु पक्षियों को मारनेवाले वा मच्छियों के समुद्र का ठेका लेनेवाले चोर, डाकू, खूनी, व्यभिचारी पुरुष तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों वा वेश्या आदिकों का भी धन ठाकुरजी को चढ़ाया जाता है, इसलिये सद्गृहस्थों को उचित है कि अपने घर में ठाकुरजी की मूर्त्ति को वा अभ्यागतरूपी विष्णु को वा दीन दुखी अनाथों को देकर (भोग लगाकर) सदैव भोजन करना चाहिए। जो इस भोग के दिये विना खाता है वो पापात्मा मलमूत्र को खाता है ऐसा श्रीकृष्णजी कहते हैं।

(२५) वीर ब्रह्मचारी क्षत्रिकुल भूषण भिष्मपितामह कहते हैं—हे पाण्डुकुलभूषण धर्मपुत्र युधिष्ठर ! दरिद्रियों को दान देओ सो ही दान फलदायक होता है।

दानं दरिद्रे दीयते सफलं पाण्डुनन्दन।

(२६) सुपात्रदानाच्च भवेद्धनाढ्यो धन प्रभावेण करोति पुण्यम्। पुण्य प्रभावाच्च दिवं प्रयाति पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी॥

भावार्थः—सुपात्रों को दान देने से दाता धनवान् होता है और धन शुभ कर्मों में खर्च करने से स्वर्ग मिलता है इस प्रकार बार २ धनवान् होकर रोग शोकादि से रहित होकर उस धन को भोगता है।

वशिष्ठस्मृति—

(२७) योगस्तपो दमोदानं सत्यं शौचं दया श्रुतम्। विद्याविज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मण लक्षणम्॥

भावार्थः—(१) योग के अष्टाङ्ग को सिद्धकर समाधि में स्थित होनेवाला (२) कृच्छ्चान्द्रायणादि व्रत को धारण करने वाला (३) मन सहित इन्द्रियों को जीतने वाला (४) परोपकारार्थ दान देने वाला (५) हित और मितसंयुक्त सत्य का बोलने वाला (६) बाहर मांस मदिरादि व्यभिचार का त्याग और अन्दर राग द्वेषादिकों का त्यागने वाला (७) संपूर्ण जीवमात्र पर दया करने वाला (८) सपूंर्ण

वेद वेदांगों को जानने वाला (९) पाताल से लेकर आकाश पर्यन्त की समस्त भूगोलादि विद्याओं का जानने वाला (१०) मनुष्य से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त संपूर्ण को अपने आत्मा के समान जानने वाला (११) ईश्वर अतिथि वेद और पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाला आस्तिक इन ग्यारह लक्षणों से युक्त ब्राह्मण ही दान का अधिकारी है।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने भी नवगुणयुक्त को ब्राह्मण कहा है।

इसी प्रकार कुलदीपिका में भी नव लक्षणयुक्त को ब्राह्मण कहा है—

दानपात्र (अधिकारी)।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम्। दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥

भावार्थः—जो विद्याहीन उत्तम कुल क्षत्री ब्राह्मणादि हैं उनसे मनुष्यों को संसार में क्या धर्म अर्थ का लाभ होता है और नीच से नीच कुल का भी यदि विद्वान् गुणवान् हो तो देवताओं से भी पूजित होता है तो मनुष्यों को उसके आदर सत्कार करने में क्या कृपणता है जैसे व्यास वाल्मीकि नीच जाति में उत्पन्न होकर अनेक ऋषि मुनि भारद्वाजादिकों के गुरु हुए हैं।

(२८) जो महान् पुरुष विद्या वा दैवी संपत्ति वा परोपकार में अपना जीवन व्यतीत करते हैं ऐसे पुरुषों का जो मन, वाणी वा शरीर से सत्कार करना है वह ही उत्तम दान है।

(२९) दान अपनी जाति की वृद्धि वा व्यापार की वृद्धि वा अविद्या करके मूर्च्छित जो भारतवर्ष है उसको चैतन्य करने वाले संजीवनी बूटीरूपी जो अखबार हैं उनको देना।

(३०) सबसे श्रेष्ठ दान यह है कि जो प्राणीमात्र को अभयदान देना है, यथाः—

प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

भावार्थः—इस संसार में जो प्राणीमात्र को प्राणदान (जीव दान) देता है ऐसा दान भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल में और दूसरा दान नहीं है।

(३१) कुपात्रों को दान देनेवाला दाता पत्थर की नौका (नाव) में बैठकर पापरूपी समुद्र में डूबता है सो यह हैः—

कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्री दारिद्र्यदोषेण करोति पापम्। पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्री पुनरेव रोगी ॥

भावार्थः—कुपात्र किसका नाम है सो श्रवण कीजिये-(१) विद्याहीन, (२) विद्वान् होकर भी कुकर्मी, (३)

जपहीन, (४) तपहीन, (५) संध्याग्निहोत्र रहित, (६) स्वार्थी, (७) वेश्यासक्त, (८) विषय लोलुप, (९) प्रमादी, (१०) छली, (११) कपटी, (१२) द्वेषी, (१३) मिथ्यावादी, (१४) भांग तमाखू गांजा सुलफा अफीम और शराब तथा मांस जूआ चौपड़ सट्टा आदि दुष्ट व्यसनों के सेवन करने वाला, (१५) निन्दक, (१६) कृतघ्न, (१७) कान में फूंकने वाला, (१८) विश्वासघाती ।

इत्यादि कुपात्रों को दान देने से दाता दरिद्री होता है और दरिद्रता के प्रभाव से पापकर्मों से जीविका करता है उन पापों के प्रभाव से अनेक दुःखरूपी नरकों को प्राप्त होता है, इसी प्रकार बारंबार दरिद्री और पुनः पुनः नाना प्रकार के रोगों करके क्लेश पाता है । पुनः मनुभगवान्जी तीसरे अध्याय में श्राद्ध करनेवालों को पात्र कुपात्र का निर्णय करके वर्णन करते हैं ।

सो निर्णय यह है:-१-जो वेद विद्या रहित है, २-जो अपने धर्म से भ्रष्ट है, ३-जुवा आदि खेलने वाला, ४-पशु पक्षी और कुत्तों को पालने वाला, ५-पंचयज्ञों से रहित, ६-वेद और ब्राह्मणों की निंदा करने वाला, ७-रासलीला आदि में नाचने वाला, ८-पैसा लेकर पढ़ाने वाला, ९-पैसा लेकर औषधि करने वाला, १०-देवता का पुजारी, ११-ज्योतिषी, १२-चिट्ठी बांटने वाला हलकारा, १३-शूद्रों का गुरू, १४-अप्रिय बोलने वाला, १५-खेती करने वाला, १६-घृत तैलादिक बेचनेवाला, १७-व्याज लेकर जीविका करनेवाला, १८-व्यापार करनेवाला, १९-माता पिता की सेवा रहित, २०-अग्नि लगाने वाला २१-गर्भ गिराने वाला, २२-विष देनेवाला, २३-झूंठी गवाही देने वाला, २४-मद्यपान करनेवाला, २५-मित्र से द्रोह करनेवाला, २६-चुगली करनेवाला, २७-हिंसा करनेवाला, २८-हिंसा का उपदेश करनेवाला, २९-नित्यप्रति भिक्षा मांगने वाला, ३०-उत्तम पुरुषों करके जो निंदनीय हैं जो भागवतादि कथा सुनकर पतिव्रता स्त्रियों से चरण दबवाते हैं ऐसे मनुष्यों को देव तथा पितृश्राद्धादि कार्यों में भोजन नहीं कराना चाहिये, ऐसे मनुष्यों को मनुजी देव, पितृ श्राद्ध कार्यों में अन्न का भी निषेध करते हैं जब अन्नमात्र का निषेध मनुजी करते हैं तो नाना प्रकार के दान ऐसे कुपात्रों को क्यों देना चाहिये क्योंकि जिस धर्मकार्य में १०००००० दशलाख मूर्खों के भोजन कराने से जो लाभ होता

है वो एक विद्वान् के भोजन कराने से मिलता है, मनु० अ० ३। श्लोक ६॥

श्लोकः—विद्यातपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु। निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्विषात् ३। ६८। अर्थः—विद्या और तप से संयुक्त ब्राह्मणों के मुखरूप अग्नि में श्राद्धरूपी अन्न का हवन करने से महान् पाप और आपत्तियों से बचता है १४४। श्लोक म० अ० ३॥

सर्व वेद और वेदों के अर्थ को जानने वाला तथा उनही का उपदेश करनेवाला तथा ब्रह्मचर्य को धारने वाला और यदि ऐसा सुपात्र न मिले तो गुणवान् मित्र को श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये।

कितनेक सनातनधर्म को न मानने वाले नवयुवक कहते हैं कि श्राद्ध न करना चाहिये सो श्राद्धादि अवश्यमेव करना चाहिये क्योंकि जिस के करने से माता पिता आदिकों के उपकार की स्मृति होती है और दूसरा यह है कि उनके निमित्त से हमारे घर से कुछ पुण्यार्थ निकलता है तीसरा जब एक पैसे का पोष्टकार्ड वा मनीआर्डर अनेकों स्थानों में फिरकर भी उसी को मिलता है जिसके कि नाम पर भेजते हैं, यदि वह न मिले तो वापिस हमें ही मिलता है इसी प्रकार जिनके निमित्त हम ईश्वर को साक्षी रखके करते हैं वह उन्हीं को मिलेगा वा हमको मिलेगा जो शुभ अशुभ कर्म किया जाता है वही कर्म निष्फल नहीं होता, हां, हमारी यह मूर्खता है कि हम पात्र कुपात्र को न विचारकर जो कार्य करते हैं उसका फल उपहासरूप निंदा के पात्र होते हैं।

पुनः देखिये=ब्यावर में श्री रघुनाथजी के मंदिर में देवी-भागवत तृतीय स्कंध ३ अध्याय १० पृष्ठ ६६ में लिखा है कि उस राजा को धिक्कार है जिसके राज्य में मूर्ख ब्राह्मणों की पूजा, दान, मान से होती है जहां मूर्ख और पंडित का भेद न हो वहां जानना चाहिये कि राजा भी मूर्ख है क्योंकि दुर्जनों की विभूति दुष्टों के अर्थ होती है जैसे कटु नीम के फल मलमूत्र-भक्षक कौओं के अर्थ होते हैं जो कोई शुभ कर्म्मों से फल चाहता हो वह मूर्ख ब्राह्मण को आसन पर न बिठावे और राजा उसको शूद्रों के समान हल चौका बरतनादि के कर्मों में लगावे।

महाभारत शांतिपर्व में क्षत्रीकुलभूषण वीर-ब्रह्मचारी भीष्म-पितामह बाणों की शय्या पर विराजमान हो कर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर के प्रति कहते हैं कि हे धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर! मूर्ख ब्राह्मणों

को शूद्रों के समान कार्य में लगाना चाहिये ।

और भी देखिये—

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् । दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्रश्रीः स्वयमागता ॥

भावार्थः—जिस देश में, जिस ग्राम में वा जिस घर में सप्त व्यसनी मूर्खों का सत्कार नहीं होता और उनको दानादि नहीं दिया जाता है और जिस देश में, जिस ग्राम में, जिस घर में तीन वर्ष, वा दो वर्ष वा एक वर्ष का भी अन्न संचित रहता है और जिस देश, जिस ग्राम, जिस घर में स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति (स्नेह), मैत्री आदि सद्भाव हैं वहां लक्ष्मी स्वयं आकर के विराजती है और सुखसम्पत्ति को बढ़ाती है जिस देश में यह ऊपर कहे हुए प्रसंग नहीं हैं वह देश रसातल को पहुंचता है ।

पुनः ।

तितिक्षाज्ञानवैराग्य शमादिगुणवर्जितम् । भिक्षामात्रेण जीवन्ति ते नरा पशुवत् किल ॥

भावार्थः—(१) तितिक्षा, जो शीतोष्ण, भूख, प्यास, सुख दुःख इन्हों के न धारने वाला (२) ज्ञान, जो वेदादि विद्या से रहित, (३) वैराग्य जो वीतराग से रहित, अर्थात् मनुष्य से लेकर ब्रह्मापर्यन्त जो लौकिक सुख हैं उनको जो काकविष्ठा के समान समझकर नहीं त्यागता, (४) शमादि मन सहित इन्द्रियों के दमन करने से जो रहित है, (५) गुण अर्थात् दैवी संपत्ति गुणों से रहित है ऐसे ऊपर कहे हुए लक्षणों से जो रहित साधु वा ब्राह्मण है और भिक्षामात्र से जीवन करते हैं वे मनुष्य वर्त्तमान में पशु के समान हैं और मरे पीछे पापी पुरुषों के प्राप्त होने योग्य जो नरक हैं उनमें जाकर नरकरूपी दुःख को दाताओं के सहित भोगते हैं ।

पुनः तीनकाल की संध्या, उपासना, अग्निहोत्र, पूजापाठ आदि नित्य नियम को त्याग कर स्टेशनों पर जाकर तीन संध्यारूपी तीन गाड़ी—डाक, पसींजर, लोकल के यात्रियों को साथ लेकर अनेक स्थानों में भटका २ कर धर्म के नाम से उनसे धन उपार्जन कर के सप्तव्यसनादि दुष्ट कर्मों में लगाने वालों को जो दाता धन देते हैं सो यजमान गुरू दोनों शास्त्र में कहे हुए पापात्माओं को प्राप्त होने योग्य जो स्थान (नरक) हैं उनको प्राप्त होंगे, गुसाईं तुलसीदासजी कहते हैं:—

"हरहिं शिष्यधन शोक न हरहिं,
ते गुरु घोर नरक में परहिं"

कबीर कलजुग के ब्राह्मण-मांस मछलियां खायं । पांव पड़े राजी रहे मने करे जलजा ।

सज्जनगण थोड़ा और भी देखिये:-

जो सनातनधर्म का पवित्र स्थान जिसका नाम हरिहर क्षेत्र है, कार्तिकी पूर्णमासी के पर्व पर छोटे २ बकरी के लाखों बच्चे उठा २ कर गंगा की बहती धारा में फूलों के समान चढ़ाये जाते हैं और ग्वाल-अष्टमी के दिन गांव २ में शहर २ में लाखों सूअरों की पिछली टांगों को बांध कर और गौओं के समूह के बीच में उन सूअरों को गौओं के मत्थे पर ब्राह्मण लोग फेंकते हैं और उन गौओं को चमका कर उन सूअरों को कई घंटे तक गौओं के सींगों से पटकवाते और पैरों की लातों से मरवाते हुए प्राण लेते हैं, विचाररूपी नेत्रों से रहित और दया-शून्य पुरुष देखकर प्रसन्न होते हैं और इसी प्रकार जीवित कछुए को भगवान् का अवतार मानकर जलती २ अग्नि के ऊपर उलटा रख कर उस को भूनते हैं और पेट को भोग लगाते हैं इसी प्रकार जीती मच्छी को भी भुट्टे के समान अग्नि में भूनते हैं ।

और भी देखिये:-

तिरहुत-निवासी सनातनियों की

गणेशपूजा-

श्री गणेशजी का वाहन मूसा (ऊंदरा) उसको भी लम्बे चौड़े तिलकधारी और पढ़े लिखे हुए पेट में आहुति देते हैं और सनातन-धर्म्म महामंडल के प्रधान शिरोमणि श्री श्री १०८ महाराजाधिराज श्री रमेश्वरप्रसादसिंहजी की जन्मभूमि दरभंगा के पास ग्राम चौहटा(स्टेशन कमतौल) ग्राम में बस्ती के सब ब्राह्मण लोग माघ शुक्ला ५ के पश्चात् रविवार की रात को एक बड़े मकान के भीतर सब एकत्र होकर धर्मराज का पूजन करते हैं सो पूजन यह है कि दो २ चार २ वा दश २ वर्ष के बकरे जिनके अण्डकोष प्रथम से ही निकाल कर धर्मराज के निमित्त रक्खे हुए थे उन बकरों को सौ दोसौ चारसौ पांचसौ धर्मराज के सन्मुख लाकर न्याय कराते हैं अर्थात् उन बकरों को घास काटने की दांतली के साथ उनके गर्दनों को काट २ कर धर्मराज के सन्मुख शिर स्थापित कर पीछे उन सब शिरों को उसी मकान में रात ही रात में दफन करके अपने स्थान को जाते हैं प्रातःकाल उठते ही निर्दइयों के समान उनकी खाल उतारकर उन खालों के रोमों को चौके की चिता में दाह करके त्वचा

के सहित सब मांस को पकाकर सब मिलकर के मुखरूपी श्मशान में दाह करके पश्चात् शेष मांस जो बचजाता है उस मांस को उसी मकान के भीतर गाड़कर फिर अपने २ स्थान में चले जाते हैं।

और भी देखिये:—

सनातन धर्मियों की दुर्गापूजा।

इसी मिथिला देश के निवासियों को ईंट पत्थर के देवताओं के सामने चैतन्य देवतारूपी बकरे के गले का पुजारी-रूपी कलियुगी सिद्ध की छाती पर काट २ कर उस की धड़ की नस को भक्तजन सिद्ध के मुख में लगाकर खून (रक्त)को पिलाते जाते हैं ऐसे अनेकों बकरों के खून को एकही मनुष्य पी जाता है जिस देश में ऐसे २ निर्दयी खून पीनेवाले राक्षस-रूपी सिद्ध रहते हैं उस देश का क्यों न कल्याण होवे।

इसी प्रकार जब श्रीमहाराज साक्षात् अष्टमी की पूजन में सैकड़ों बकरे स्वयं कटवाते हैं तब निरपराध दीन बकरों की पुकार कौन सुने. इसी देश में सूअरों को खानेवाले उनको ऐसी दुर्गति से मारते हैं कि जिसको देखकर रोम खड़े होजाते हैं और भी उपरोक्त मैथिल देश सरयूपार के निवासियों का कर्त्तव्य देखिये-जो कि मच्छ कच्छादि अवतार मानकर उनको जल-तुरई कहकर भक्षण करते हैं।

और भी देखिये:—

अवतारत्रयं विष्णोर्मैथिली कवलीकृतम्। इति संचित्य भगवान्नारसिंहं वपुर्दधौ ॥

भावार्थः—विष्णु भगवान् संसार के कल्याण के वास्ते ३ अवतार धारण करके कच्छ, मच्छ, वराह (सूकर) रूपसे प्रकट हुए, परन्तु उन मैथिली ब्राह्मणों ने संसार में वीरता दिखलाने के वास्ते अपने इष्टदेव अवतार-रूप कच्छ, मच्छ, वराह को मारकर उन्हें पेट में भस्म करदिया, तो विष्णु भगवान् ने फिर दुष्टों के नाश और भक्तों की रक्षा करने के लिये नरसिंह शरीर धारण किया, परन्तु मैथिली ब्राह्मणों के फिर भी अविद्यारूपी नेत्र नहीं खुलते। इसीप्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी भगवान् को व्यापक मानकर और उसी व्यापक का अवतार दुष्टों के नाश के वास्ते मानते हैं और फिर भी उसी भगवत् सृष्टि का नाश करते हैं ॥

कान्यकुब्जा द्विजाः सर्वे सूर्या एव न संशयः। मीन मेषादिराशीनां भोक्तारः कथमन्यथा ॥

भावार्थः—कान और कुब्ज ये दोनों तेजस्वी ब्राह्मण अयोध्या में मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र के यज्ञ में प्राप्त हो

कर अनेक विद्वानों के बीच में ब्रह्मतेज का परिचय दिया अर्थात् शास्त्रार्थ में सर्वोपरि रहे और ब्रह्मचर्य का जो प्रभाव अर्थात् वीर-धर्म का सर्वोपरि परिचय दिया अर्थात् सब योद्धाओं को मर्दन कर अपना बल दिखाया और पश्चात् रामचन्द्रजी ने इनको सूर्य की पदवी दी "सर्वेसूर्या एव न संशयः" ऐसा वाक्य कहकर प्रदान की, पश्चात् रामचन्द्रजी ने इनको बहुत द्रव्य देना चाहा, परन्तु इन्होंने किंचित् मात्र भी ग्रहण नहीं किया इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम महर्षियों की सन्तान हैं हम अपने उद्योग से द्रव्य उपार्जन कर पूर्व अतिथि सत्कार वा अनेक प्रकार के उपकार में लगाकर पीछे अपने शरीर का पालन पोषण करते हैं हमारी यह प्रतिज्ञा है कि हम किसी का प्रतिग्रहरूपी मलको न उठाकर अपने ब्रह्मतेजकी रक्षा करेंगे। उन्हीं की औलाद वर्त्तमान काल में अति अपवित्र मांस, मच्छी आदि ईंट पत्थर के देवता के बहाने पेट में मुर्दों को दफन करने लगे, इसी वास्ते देवता के क्रोध से इन के गले में भैयागिरि लटकादी है. अपनी जाति, गोत्र और मातृभूमिका जो गौरव मान बड़ाई थी उसे भूलगये यदि यह अभी भी उसे याद करके अपनी मातृ-भूमि कनोज में ब्रह्मचर्य आश्रम और कान्यकुब्ज—महामंडल स्थापित करदें तो पूर्व की नांई सूर्य की पदवी फिर इनको प्राप्त होगी.

चम्बा राजधानी में श्री मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की विजयादशमी दशहरे के दिन एक भैंसे को सिंदूरादि से शृंगार करके नदी के किनारे सब राजा प्रजा एकत्र होकर यमराज के वाहनरूपी भैंसे को बलात्कार से कूट २ कर उसे पकड़ कर गंभीर वेग वाली बहती हुई नदी के प्रवाह में चढ़ाते हैं अर्थात् कई हजारों आदमी लाठी और पत्थरों से मार २ कर उसको नदी के पार जाने के लिये प्रयत्न करते हैं देवयोग से यदि वह नदी के पार निकल गया तो मानो हमारी आपत्ति दुःख सब दूर होगया ऐसा उनको विश्वास है यदि बहता२ डूब जाय वा फिर पीछा गांव में आजाय तो अपना अभाग मानते हैं इससे परे और अविद्या अज्ञान कहां से लाना चाहिये।

और भी देखियेः-सिंध देश में सनातनधर्म के पुरुष स्टेशन पर स्टेशन रोटी गोश्त करके बेचते हैं और हिंदुओं के होटल में मुसलमानों की रोटियां बिलायत के बिस्कुट आदि बेचते हैं और मुसलमानों की झूंठी

प्यालियां चाह की हाथ से उठाते हैं हिन्दु होकर मुसलमानों व कृश्चिनों के होटलों में खाते हैं और फिर भी कहते हैं कि हम सनातन-धर्मावलम्बी हैं इससे परे शोक और आश्चर्य क्या होसक्ता है।

और भी देखियेः—

राजपूताना (मालवा) आदि देशों में जो भारत बीरों की सन्तान क्षत्री रूपी राजा हैं उनका कर्त्तव्य देखिये कि दशहरे के दिन यमराज के वाहन रूप भैंसे को खूब शराब पिला, सिंदूर लगा कर लाखों पुरुषों के बीच में उसके पेट में बरछी मारकर उसको चमका उसको मैदान में भगाकर उसके पीछे घुड़सवारों को दौड़ाकर चौतरफ से घेर तलवार वा भालों से उसका शिकार करते हैं. सज्जनगण देखिये ! ये वोही क्षत्री वंश हैं जिनको जीव—मात्र की रक्षा और दुष्टों के नाश करने के वास्ते ईश्वर की आज्ञासे ऋषि मुनियों ने भारत में राजारूप करके स्थापित किया था, परन्तु यहां बड़ा आश्चर्य है कि यही राजलोग मुर्गी तीतरादिक पक्षियों को अपने चौके में गरम पानी में उबला कर प्राण लेते हैं और अपनी जठराग्नि को शांत करते हैं।

"चार यार जो चढ़े शिकार, मक्खी घेरी बीच बज़ार, मारी नहीं पर लंगड़ी कीन्हीं, बड़ी खुदा ने फत्या (बहादुरी) दीन्हीं"।

टट्टी की ओट में बैठकर मृगादिक खरगोश वा तीतरों का शिकार वा देवता के बहाने भैंसे बकरे काटते हैं और उन मुरदों को पेट में दफन कर कहते हैं कि हम क्षत्री हैं, क्षत्री नाम तो छाया का था अर्थात् प्रजा को नाना प्रकार के क्लेशों से बचाने के लिये था। देखिये-जिस समय इन्द्र ने अभिमान कर अति वर्षा का प्रारंभ किया उसी समय कृष्ण भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को सब से छोटी चिटली अंगुली पर उठाकर बृजमात्र के पशु पक्षी की रक्षा कर क्षत्री-वंश का परिचय दिया था। ऐसे वीर-ब्रह्मचारी क्षत्री-वंश को कलंकित करने वाले धूर्त लोग कहते हैं कि "वह बहुत स्त्रियों को रखने वाला व्यभिचारी था" उन धूर्तों का यह कहना बिलकुल निष्फल है क्योंकि उनका जन्म ही धर्म की रक्षा के निमित्त और दुष्टों के नाश के वास्ते था सो गीता में भली-भांति दर्शाया है। क्षत्री तो "एका नारी सदा ब्रह्मचारी" ही होते हैं.

याददास्त.

श्री नैपालमुकुटमणि आज्ञा देते हैं-डाक्टर रत्नदासजी ! स्वामीजी से पूछो और क्या फर्माते हैं.

डाक्टर रत्नदासजी–स्वामीजी ! आपकी क्या आज्ञा है अर्थात् सेवा के वास्ते क्या चाहिये ? ।

स्वामीजी–१ दुर्गति के साथ जीवों का वध बंद कराना, २–मादक वस्तुओं के प्रचार को बंद कराना, ३–ब्रह्मचर्याश्रम का पालन कराना, ४–बाल विवाह वृद्धविवाह तथा बहुविवाह को बंद कराना, २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की कन्या के विवाह का प्रचार कराना, सो यह है:--

त्रिंशद्वर्षः षोडश वर्षां भार्य्यांः विन्दते नग्निकाम्ः । इति श्रुतिः ॥ जिस कन्या का सोलह वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य क्षीण नहीं हुआ उस कन्या के तीस वर्ष के पुरुष के साथ विवाह करने की श्रुति की आज्ञा है ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम् । अथर्व० काण्ड ११ ॥ कन्या ब्रह्मचर्य से परिपाक युवा अवस्था में युवापति को प्राप्त हो ।

ऊनषोडशवर्षायाम–प्राप्त पंचविंशतिम् ॥ यद्याधत्तेपुमान्गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ६७ जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेंद्रियः ॥ तस्मादत्यंत बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ६८ ॥ सोलह वर्ष की अवस्था से छोटी स्त्री और पचीस वर्ष की अवस्था से छोटा पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ कुक्षि ही में विकार को प्राप्त होता है और खण्डित होजाता है यदि पूरा होकर जन्म भी लेवे तो अल्पायु होता है थोड़ा जीवे तो भी दुर्बल इंद्रियोंवाला (कमज़ोर) ही रहता है इस कारण पूर्ण ब्रह्मचर्य के धारण किये विना विवाह कदापि नहीं करना चाहिये श्रुति भगवती तथा धन्वंतरी भगवान् की आज्ञा को उल्लंघन करके जो दुष्ट पापात्मा अपना स्वार्थ वा विषयाशक्ति को पूर्ण करना चाहते हैं वह सब देशों का सत्यानाश करने वाले हैं ।

सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः । सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ॥ सत्यरूपं परं ब्रह्म सत्यं हि परमं तपः । सत्य-मूलाः क्रियाः सर्वाः सत्यात् परतरो नहि ॥ सत्यव्रताःसत्यनिष्ठा सत्यधर्मपरायणाः। कुजसाधनसत्या ये नहि तान् बाधते कलिः ॥

धर्म की आज्ञा प्रवर्तन कराना यही अतिथि सत्कार है और किसी वस्तु की ज़रूरत नहीं है. यथा-रघुकुल रीति सदाचल आई । प्राण जाय पर वचन न जाई ॥

मेरे अपराध को आप लोग क्षमा करेंगे. सनातनधर्म महान् समुद्र रूप है, इस में से विंदुमात्र आप लोगों की सेवा में भेजता हूं जो मनुष्यमात्र को उपयोगी है.

प्राणीमात्र का शुभचिंतक—

स्वामी परमानन्द भारत-भिक्षुक.

सन्त-सरोवर आत्मतीर्थ,

आबू पर्व्वत (राजपूताना).

काल राजा
आबू राजपुताना

सनातन धर्मकी ओट में बैठकर अत्यन्त घोर अत्याचार करनेवाले पुरुषों की क्रूरताको श्रीनैपाल महाराजने श्रवणकर अपने हृदयरूपी रजिस्टरमें धारण किया है और एक भारत भिक्षुकने इसहिंसारूपी फोड़े की निवृत्ति का उपायरूप यह मल्लम पट्टीरूपी लेख द्वारा प्रकाशित किया है सो मनुष्यमात्र को हृदय में धारण करना चाहिए।

क्षत्रियकुलभूषण वीर ब्रह्मचारी भीष्म पितामहजी कहते हैं:—

सप्तद्वीपां सरत्नां च दद्यान्मेरु सकाञ्चनम् ।
यस्य जीवदया नास्ति सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥

भावार्थ:—हे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! इस संसारमें सातों द्वीप सोने चांदी हीरे पन्ने आदि की खानि सहित दान करदो परन्तु जिस दुष्ट के चित्त में दया-देवी का निवास नहीं है उसका सब जन्म कर्म धर्म निष्फल है ।

देखिये भारतवर्ष के इतिहासों के द्वितीय सूर्य पण्डित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा क्या कहते हैं:—

श्रीयुत महाराज स्वामी परमानंदजी ! मैंने आपका बलिदानपत्र नं० ३ द्वितीयावृत्ति का पढ़ा तो कई नई बातें मालूम हुई. यदि जीवों को दुःख दे देकर मारने की प्रथा इस देश से उठजावे तो बहुत ही अच्छा है. आपने अनेक स्थलों में जीवों की दुर्दशा करके उनको मारने के जो उदाहरण दिये हैं वे रोमांच खड़े करदेते हैं, यदि कोई मांस खाने के लिये जीवहिंसा करता है तो एक दम प्राण लेलेता है परंतु धर्मका नाम लेकर दुःख दे देकर कई घंटों के बाद प्राणी को मारना यह मनुष्यधर्म नहीं है । इस पुस्तक को मनुष्यमात्रको देखना चाहिये ।

भवदीय—
गौरीशंकर ओझा,

प्राणीमात्र का शुभचिंतक·

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी परमानन्दजी भारतभिक्षु.संत सरोवर आत्मतीर्थ, आबूपहाड (राजपुताना)

इस कार्य में नीचे लिखे हुए सद्गृहस्थों ने सहायता दी है उन को धन्यवाद है:—

श्रीमान् माननीय पं० मदनमोहनजी मालवीय मेम्बर वायसराय कौन्सिल प्रयाग ने प्रथम कापी अपनी उदारता से छपवाई.

ॐ श्रीपशुपतये नमः।

रु० १०१) सेठ मंगूमल जसासिंह शिकारपुर (सिन्ध)
रु० १०१) सेठ टोपणसिंह मोटूमल हैदराबाद (सिन्ध)
रु० ५१) सेठ रामदेव फूलचन्दजी ब्यावर.

ॐ श्रीवीतरागाय नमः।

रु० १०१) राय सेठ चांदमलजी घनश्यामदास अजमेर.
रु०) रायबहादुर सेठ नेमीचन्दजी अजमेर.

ओ३म्।

१०१) पं० वंशीधरजी शर्मा वकील हाई कोर्ट अजमेर. शेष पुनः

जोगी जंगम जोवत जती, साध सेवड़ा सेवत सती। ग्यानी गिणत इसी को गती, भगवत यहीं यहीं भगवती ॥ भजकल० ॥